भारतीय दर्शन

डॉ० बी० एन० सिंह - डॉ० आशा सिंह

Scanned with CamScanner

ईश्वर की सत्ता के लिए प्रमाण

ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के लिए प्रमाण देना न्याय-दर्शन की विशेषता है। अन्य आस्तिक दर्शनो मे ईश्वर को मान लिया गया है। अतः अन्य आस्तिकों के लिए ईश्वर एक मान्यता है। न्याय की विशेषता यह है कि ईश्वर को तो मानता ही है, ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिए प्रमाण भी देता है। प्रमाण देने से ईश्वर प्रमेय बन जाता है। इस प्रकार अप्रमेय ईश्वर को प्रमेय बना देना न्याय की अपनी विशेषता है। अन्य दर्शनों में ईश्वर को श्रुति-गम्य माना गया है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर की सत्ता तो श्रुति या वेद से सिद्ध होती है। श्रुति या वेद की प्रामाणिकता तो सभी आस्तिक दर्शन स्वीकार करते हैं। न्याय की विशेषता है कि यह ईश्वर को बुद्धिगम्य भी मानता है। न्याय मे ईश्वर को प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीनों प्रमाणो से सिद्ध किया गया है। प्रत्यक्ष और अनुमान तो शुद्ध बौद्धिक प्रमाण हैं। इन तीनों प्रमाणो मे भी नैयायिक अनुमान पर बहुत बल देते हैं तथा ईश्वर को अनुमान-गम्य

Scanned with CamScanner

बतलाते हैं। ईश्वर को अनुमेय बतलाना तो बुद्धि को प्रश्रय देना है।[1] वस्तुतः ईश्वर बौद्धिक नहीं (यो बुद्धे परतस्तु सः—गीता)। बुद्धि तो एक इन्द्रिय है। वस्तुतः ईश्वर अतीन्द्रिय है।

उसकी सत्ता के लिए श्रुति ही पर्याप्त प्रमाण है। इसलिए वेदान्त आदि में ईश्वर को केवल श्रुति गम्य ही माना गया है। परन्तु ईश्वर को अनुमेय मानना तो अप्रमेय को प्रमेय बनाना है, अबौद्धिक को बौद्धिक मानना है, अवाङ्मनसगोचर अतीन्द्रिय को इन्द्रियगम्य स्वीकार करना है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि न्याय शास्त्र का दूसरा नाम प्रमाण शास्त्र है। प्रमाण में भी अनुमान प्रमाण तो नैयायिकों के लिए प्राण-स्वरूप है। यद्यपि अनुमान का विषय तो भौतिक या सांसारिक है, परन्तु न्याय में इसकी इतनी प्रतिष्ठा है कि नैयायिक अभौतिक ईश्वर को भी इसका विषय बना लेते हैं। सुप्रसिद्ध नैयायिक श्री उदयनाचार्य ईश्वर की वन्दना करते हुए कहते हैं—हे ईश्वर! आप केवल प्रमाण से ही जाने जाते हैं—प्रमाणैकगम्य शिवम्। स्पष्टतः वे अप्रमेय ईश्वर को प्रमाणगम्य कह प्रमेय बतलाते हैं।

नैयायिकों के अनुसार ईश्वर प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीनों प्रमाण से सिद्ध है।[2]

१. प्रत्यक्ष प्रमाण— प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकार का होता है—लौकिक और अलौकिक। चक्षु, जिह्वा, घ्राण, त्वचा आदि लौकिक प्रत्यक्ष हैं जिनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। इनमें इन्द्रिय और विषय का सम्पर्क या संयोग प्रत्यक्ष रूप से सीधे बिना किसी माध्यम के होता है। परन्तु अलौकिक प्रत्यक्ष (सामान्यलक्षण, ज्ञानलक्षण, तथा योगज) में सम्पर्क परोक्ष रूप से माना गया है। योगज प्रत्यक्ष अलौकिक का ही एक प्रकार है। योगाभ्यास, साधना से सिद्ध पुरुष, योगी को ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। योगी को दिव्य-चक्षु प्राप्त होता है जिससे वह ईश्वर के रूप का प्रत्यक्ष करता है।

Scanned with CamScanner

२. अनुमान-प्रमाण— अनुमान से ईश्वर की सत्ता सिद्ध करना न्याय-दर्शन की विशेषता है। जिस प्रकार पाश्चात्य दर्शन में मध्ययुगीन दार्शनिक सन्त आगस्ताइन, सन्त एक्विनस, तथा वर्तमान युग में देकार्त ईश्वर को सिद्ध करने के लिए अनेक अनुमान का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार न्याय दर्शन में भी ईश्वरानुमान में अनेक हेतु या लिंग बतलाया गया है। सुप्रसिद्ध नैयायिक श्री उदयनाचार्य ईश्वर के अनुमान मे नौ हेतु बतलाते हैं—

कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्यमतः श्रुतेः।
वाक्यात् संख्याविशेषाच्य साध्यो विश्वविदव्यजः॥

न्याय कुसुमांजलि-प्रथम स्तवक

आचार्य उदयन के ईश्वर के लिए नौ अनुमान सुप्रसिद्ध हैं तथा अन्यत्र दुलर्भ हैं:

१. कार्य—प्रत्येक कार्य का कर्ता अवश्य है, अर्थात् कर्ता के बिना कार्य असम्भव है। संसार भी एक कार्य है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति होती है। इस कार्य का कर्ता ईश्वर ही हो सकता है। न्याय-वैशेषिक के अनुसार कार्य कारण से होता है। कारण तीन प्रकार का है—समवायि, असमवायि और निमित्त। समवायि कारण तो परमाणु है, इन्हें ही उपादान कारण भी कहते हैं। असमवायि कारण परमाणुओं का संयोग है। निमित्त कारण कर्ता होता है। कर्ता के लिए तीन बातों की आवश्यकता है। पहला कर्ता को उपादान कारण का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। दूसरा कर्ता में (चिकीर्षा) होती है। तीसरा कर्ता में प्रत्यक्ष (कृति) होता है। ईश्वर को परमाणुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान है, वह परमाणुओं से सृष्टि करने की इच्छा करता है तथा प्रत्यक्ष करता है। अतः सृष्टि से स्रष्टा की सत्ता सिद्ध होती है।

२. आयोजन—अदृष्ट का नियामक ईश्वर है। अदृष्ट कर्म और फल के बीच की कड़ी है। हम कर्म करते हैं। परन्तु कर्म-फल शीघ्र नही मिलता। वैदिक कर्म-यज्ञ आदि तो बाद में फल देते हैं। इस प्रकार तो कर्म करने पर नष्ट हो गया। फल किस आधार पर होता है? कर्म और फल के बीच अदृष्ट है। कर्म तो समाप्त हो जाता है। परन्तु कर्म का संस्कार अदृष्ट रूप में रह जाता है। इसी अदृष्ट के आधार पर कर्म का फल होता है। यदि अदृष्ट को न माना जाय तो पहले किये हुए कर्म बाद मे मिलने वाले फल के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। कर्म और फल मे सम्बन्ध न मानने पर कारण सिद्धान्त ही समाप्त हो जायेगा। अतः कर्म और फल का आयोजन करने वाला या अदृष्ट का नियामक ईश्वर है। इसका संचालन तो चेतन पुरुष (ईश्वर) ही कर सकता है। जीवात्मा भी चेतन पुरुष है, परन्तु वह ससीम तथा अल्पज्ञ है। अतः

असीम सर्वज्ञ परमात्मा ही अदृष्ट का नियामक हो सकता है। आयोजक कर्म को भी मानते हैं। प्रलय के बाद सृष्टि होती है। सृष्टि परमाणुओ के सयोग से होती है। जब सबका विनाश हो जाता है तो परम-चेतन परमात्मा के कर्म (प्रत्यक्ष) से ही परमाणुओं से सयोग होता है तथा सयोग से सृष्टि। परमाणुओ में क्रिया तो है, परन्तु परमाणु अचेतन हैं। इनका प्रेरक अवश्य ही परम चेतन परमात्मा है।

३. धृति या धारण—परमात्मा ही जगत् को धारण किये रहता है। ईश्वर ही जगत का आधार है जिसके कारण जगत का पतन नहीं होता। किसी भी गुरु-भूत पदार्थ (वजनदार) का पतन हो सकता है यदि पतन का प्रतिबन्धक (आधार) न हो तो। उदाहरणार्थ, आकाश मे पक्षी तिनका को लेकर (चंगुल में दबाकर) उड़ते हैं। तिनका निराधार नहीं। इसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अत्यन्त गुरुभूत है। निराधार होने पर इसका पतन हो सकता है। यह परमात्मा में अधिष्ठित है, वही इसका आधार है। इसके पतन का प्रतिबन्धक है। अनन्त ब्रह्माण्ड का आधार सर्वशक्तिसम्पन्न ईश्वर ही है।

४. विनाश—प्रलय से भी ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। सृष्टि और प्रलय प्रकृति का नियम है। संसार की सृष्टि होती है, अतः इसका विनाश भी अवश्य होता है। जिसका आदि है, उसका अन्त भी अवश्य। सृष्टि करने का सामर्थ्य चेतन परमात्मा में ही है तथा उन्हीं में प्रलय का भी सामर्थ्य है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रलय करना परमात्मा का ही कार्य हो सकता है। जीवात्मा न तो ससार की सृष्टि कर सकता है और न विनाश ही। परमात्मा-महेश्वर की इच्छा से ही संहार होता है।

५. पद से परमात्मा की सत्ता सिद्ध होती है। पद को सुनकर हमें अर्थ या वस्तु का बोध होता है। घट शब्द से कम्बुग्रीवादिमान वस्तु का बोध होता है तथा पट को सुनकर आतान-वितान युक्त वस्तु का बोध होता है। इस व्यवहार को जन्म देने वाला ईश्वर ही है। यह ईश्वर की इच्छा है कि इस पद से इस पदार्थ का बोध हो। ईश्वर सर्वज्ञ है, अतः वह व्यवहार का कारण हो सकता है। जीव अल्पज्ञ है, वह इस व्यवहार का प्रयोजक नहीं हो सकता। व्यवहार का प्रयोजक होने के कारण ही ईश्वर को आदि गुरु माना जाता है।

६. प्रत्यक्ष या प्रामाण्य से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। वेद के वाक्य प्रमाण हैं, क्योंकि इन वाक्यों का उच्चारण करने वाला (वक्ता) परमात्मा है। परमात्मा को आप्त पुरुष कहा गया है। आप्त वाक्य प्रमाण है, क्योंकि आप्त सत्यवादी होता है। वेद के वाक्यों का वक्ता परम आप्त परमात्मा ही है तथा उसका वचन प्रमाण है। न्याय-दर्शन परतः प्रमाणवादी है। इस दर्शन के अनुसार ज्ञान की प्रामाणिकता ज्ञान में नहीं

रहती। ज्ञान की प्रामाणिकता कर्म की सफलता मे होती है। वैदिक ज्ञान की प्रामाणिकता भी वैदिक-कर्मो की सफलता मे है। वैदिक कर्म (यज्ञादि) सफल कार्य हैं। इसलिये इन्हें प्रामाणिक ज्ञान मानना चाहिये तथा स्वीकार करना चाहिये कि इस प्रामाणिकता का कारण परमात्मा है।

७. श्रुति से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। श्रुति का अर्थ वेद है और वेद का कर्ता पुरुष विशेष ईश्वर को माना गया है। न्याय के अनुसार वेद पौरुषेय है अर्थात् पुरुष निर्मित है। परन्तु यह साधारण नहीं, असाधारण, पुरुष विशेष ईश्वर के द्वारा रचित है। वेद का रचयिता साधारण पुरुष नहीं हो सकता, क्योंकि वह ससीम है। वेद असीम है, इसका कर्ता भी असीम, अनन्त ईश्वर ही है।

८. वाक्य (वैदिक) से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। हम जो भी वाक्य सुनते हैं, वे सभी पौरुषेय हैं। इसका कारण है कि सभी साधारण पुरुषों के द्वारा रचित या उच्चरित हैं। वैदिक वाक्य भी पौरुषेय हैं, क्योंकि ये भी पुरुष के द्वारा रचित या उच्चरित हैं। परन्तु यह पुरुष-विशेष परमात्मा है। मीमासंक लोग वेद को अपौरुषेय मानते है। नैयायिक इसे नहीं स्वीकार करते। नैयायिकों का कहना है कि वैदिक-वाक्य भी वाक्य ही हैं। अन्तर इतना ही है कि ये असाधारण वाक्य हैं जो अतीन्द्रिय विषयों का प्रतिपादन करते हैं। ये अवश्य ही परम पुरुष, परमात्मा द्वारा उच्चरित हैं।

९. संख्या विशेष से भी ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। यह न्याय-दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। न्याय के अनुसार परमाणुओ के संयोग से सृष्टि होती है परन्तु इनके संयोग का क्रम है। दो परमाणुओं का संयोग द्वयणुक तथा तीन द्वयणुक का संयोग त्रयणुक कहलाता है। यही पदार्थों की सृष्टि का क्रम है। परमाणु और द्वयणुक परिमाण अणुरूप माना गया है। परन्तु परमाणु का अणु-परिमाण नित्य है तथा द्वयणुक का अनित्य, क्योंकि इसकी उत्पत्ति होती है। जिसकी उत्पत्ति होती है वह अवश्य ही अनित्य होगा। इस अनित्य परिमाण (द्वयणुक) के समवायिकारण दो परमाणु होते हैं। परमाणु का परिमाण (नित्य) तो अणुरूप है। इस प्रकार द्वयणुक (दो परमाणुओ के संयोग) का परिमाण अणु नहीं, बरन् अणुतर होना चाहिए। परन्तु द्वयणुक का परिमाण तो अणु है, अणुतर नहीं। इस अणुतर परिमाण के निराकरण के लिए न्याय-दर्शन में द्वयणुक के परिमाण को द्वित्व संख्या से उत्पन्न स्वीकार किया जाता है। द्वित्व संख्या तो अपेक्षा बुद्धि की देन है। सृष्टि के पहले इस अपेक्षा बुद्धि का कारण ईश्वर को ही स्वीकार करना होगा। अतः परमात्मा की सत्ता है।

१. शब्द प्रमाण— ईश्वर के विषय मे प्रत्यक्ष एव अनुमान प्रमाण का उल्लेख हो चुका है। उनके आधार पर यह निर्विवाद विषय है कि ईश्वर